नवम्बर १९९० हिंदी पत्रिका में प्रकाशित

एक और प्रश्न

बिम्बिसार का पुत्र राजकुमार अभय अब भगवान बुद्ध के प्रति परम श्रद्धालु हो गया। अब बार-बार उनके दर्शनार्थ जाता और धर्म श्रवण करता। कभी-कभी किसी प्रश्न के समाधान के लिए भी जाता।

हम देखते हैं कि वह भगवान से मिलने के लिए राजगृह के गिज्झकूट पर्वत पर आया है, जहां भगवान विहार कर रहे हैं। आज वह एक विशेष जिज्ञासा लेकर आया है।

वैसे तो भारत की यह सदा की विशेषता रही है, परंतु लगता है उन दिनों लोगों को परस्पर विरोधी विचारों के प्रचार की विशेष छूट थी। ऐसे आचार्य थे और अच्छी खासी मात्रा में उनके अनुयायी भी थे, जो कि कर्म सिद्धान्तों को नहीं मानते थे। न किसी अच्छे कर्म का अच्छा फल, न बुरे का बुरा। न ही वह कारण और परिणाम के सिद्धान्त को मानते थे। किसी भी परिणाम का कोई कारण नहीं, कोई हेतु नहीं। संसार में सब कुछ यूं ही अकस्मात अकारण होते रहता है। ऐसी मान्यता का उपदेशक उन दिनों का एक प्रसिद्ध धर्माचार्य था पूरण काश्यप। उसकी मान्यता थी कि यदि कोई व्यक्ति सम्यक् दर्शी हो जाता है, सम्यक् ज्ञानी हो जाता है तो इसका कोई हेतु याने कारण नहीं होता। बिना ही हेतु कोई व्यक्ति सम्यक् दर्शी, सम्यक् ज्ञानी हो जाता है। इसी प्रकार उसकी मान्यता थी कि यदि कोई व्यक्ति अदर्शी, अज्ञानी रह जाता है याने सच्चाई का वह न सम्यक् दर्शन कर पाता है, न सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर पाता है तो इसके पीछे भी कोई हेतु, कोई कारण नहीं होता। बिना ही कारण कोई व्यक्ति सम्यक् दर्शी, सम्यक् ज्ञानी हो जाता है और बिना ही कारण अदर्शी अज्ञानी रह जाता है।

आज राजकुमार अभय इसी मान्यता पर भगवान के विचार जानने आया है। भगवान उसे समझाते हैं कि इस लोकीय जगत में जो उत्पाद होता है उसका प्रत्यय याने कारण, याने हेतु, होता ही है। सब परिणामों के मूल में कोई न कोई हेतु समाया है। कोई व्यक्ति यथाभूत सच्चाई नहीं देख पाता, नहीं जान पाता याने अदर्शी, अज्ञानी रह जाता है, सम्यक् दर्शन सम्यक् ज्ञान से वंचित रह जाता है, तो यह बिना हेतु नहीं। इसके पांच हेतु होते हैं:-

१. मन में कामनाओं के ज्वार जागते हैं।

२. मन में द्वेष के उबाल उठते हैं।

३. शारीरिक आलस्य और मानसिक प्रमाद छा जाते हैं।

४. शारीरिक बेचैनियां और मानसिक संताप छा जाते हैं।

५. मन संशय-शंकाओं से उद्विग्न हो जाता है।

इन पांचों में से कोई भी अवस्था सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान में बाधक बन जाती है। अतः यह हेतु हैं जिनकी वजह से कोई व्यक्ति सच्चाई के प्रति अदर्शी, अज्ञानी रह जाता है। इन पांचों के स्वभाव को जाने बिना और उन्हें दूर किए बिना सम्यक् दर्शन कहां, सम्यक् ज्ञान कहां? अभय इस उत्तर से बहुत संतुष्ट, प्रसन्न हुआ। उसने पूछा, "इन पांचों को क्या कहते हैं भगवान?" भगवान ने कहा, "नीवरण"।

वस्तुतः नीवरण ही हैं। सच्चाई पर पड़े हुए आवरण ही हैं, जो सच्चाई को यथाभूत देखने नहीं देते।

"सचमुच भगवान! यह नीवरण ही हैं। इनमें से एक नीवरण भी उत्पन्न हो तो बाधक बन जाए। पांचों नीवरण उत्पन्न हो जाएं तो बाधा का कहना ही क्या?" – राजकुमार ने बुद्धि से समझ कर ऐसा कहा।

विपश्यी साधक इसे स्वानुभूती द्वारा समझता है। इन पांचों को साधना के क्षेत्र में अपना दुश्मन मानता है, जो प्रगति में बाधक बन जाते हैं। जैसे किसी पात्र में पड़ा पानी रंगीन हो या गँदला हो या बहुत हिलता-डुलता हो तो उसमें अपना प्रतिबिंब साफ कैसे दिखेगा? जैसे आंखों पर रंगीन चश्मा चढ़ा हो, या आंखो में धूल पड़ी हो, या आंखों के सामने अँधेरा हो या गर्द गुब्बार हो तो सच्चाई यथाभूत कैसे दिख पाएगी? विपश्यी साधक ख़ूब जानता है कि यह नीवरण जितने-जितने नष्ट होते हैं, चित्त उतना-उतना समाहित होता है, शांत होता है, स्वच्छ होता है क्योंकि आवरणहीन होता है। तभी यथाभूत सच्चाई देख पाता है। सच ही कहा है – **समाहितो यथाभूतं पजानाति।** चित्त सम्यक् रूप से समाहित होता है तो सच्चाई को प्रज्ञापूर्वक यथाभूत जान लेता है।

इसी प्रकार भगवान ने समझाया कि सम्यक् दर्शी और सम्यक् ज्ञानी भी बिना हेतु नहीं हो सकता। इसके भी हेतु हैं, कारण हैं। सात हेतु हैं, जिनके होने से कोई भी व्यक्ति सम्यक् दर्शी, सम्यक् ज्ञानी बन सकता है। यह हेतु हैं:-

१. सति(स्मृति) - याने सजगता। अपने भीतर नाम रूप के उदय-व्यय को देखते-देखते, भ्रम-भ्रांतियों से दूर होते-होते, राग-द्वेष से दूर होते-होते निरोध अवस्था को प्राप्त कर लेता है। याने सकल इन्द्रिय अनुभूति का परित्याग कर, उनसे परे परम सत्य निर्वाण को देख लेता है। यों सति के अभ्यास का संवर्धन करते हुए यथाभूत सम्यक् दर्शन और सम्यक् ज्ञान का लाभी हो जाता है। ठीक इसी प्रकार-

२. विरिय (वीर्य) - याने परिश्रम, पुरुषार्थ के अभ्यास का संवर्धन करते हुए,

३. धम्मविचय (धर्म विचयन) - याने सच्चाई के टुकड़े-टुकड़े करते हुए, उसके स्वभाव को जानने के अभ्यास का संवर्धन करते हुए,

४. पीति (प्रीति) - याने आनंद की अनुभूती के अभ्यास का संवर्धन करते हुए,

५. पसद्धि (प्रश्रब्धि) - याने प्रशांत नीरवता के अभ्यास का संवर्धन करते हुए,

६. समाधि - याने कुशल चित्त की एकाग्रता का संवर्धन करते हुए,

७. उपेक्खा (उपेक्षा) - याने सारे इंद्रिय जगत के अनित्य स्वभाव को स्वानुभूति से जानते हुए, समता के अभ्यास का संवर्धन करते हुए,

यथाभूत सम्यक् दर्शन और सम्यक् ज्ञान का लाभी हो जाता है।

ये सात हेतु हैं, कारण हैं, जिनकी वजह से कोई व्यक्ति सम्यक् दर्शी, सम्यक् ज्ञानी बन सकता है। बिना कारण नहीं।

"क्या नाम है भगवान! इन सातों का?"

"राजकुमार इन्हें **बोध्यङ्ग** कहते हैं।"

"सचमुच बोध्यङ्ग ही तो हैं भगवान! बोधि के अंग ही तो हैं भगवान! इनमें से किसी एक को भी परिपुष्ट कर लेने से यथाभूत सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान का लाभी हो सकता है। सातों के परिपुष्ट कर लेने पर तो कहना ही क्या।"

अभय राजकुमार ने इसे बुद्धि के स्तर पर समझा परन्तु प्रत्येक साधक इस बात को अनुभवों से जानता है कि इन सातों के अभ्यास द्वारा ही वह शनैः-शनैः बंधन से मुक्ति की ओर, नश्वर से अमृत की ओर बढ़ता जाता है और सच्चाई का यथाभूत सम्यक् दर्शन और सम्यक् ज्ञान उपलब्ध करता जाता है।

राजकुमार अभय भगवान के उत्तर से अत्यंत संतुष्ट, प्रसन्न हुआ।

भगवान से मिलने के लिए उसे गिज्झकूट पर्वत की चढ़ाई चढ़नी पड़ी थी, जो कि श्रमसाध्य थी। शरीर और चित्त में थकान पैदा हुई थी। परंतु अब कहता है कि भगवान से मिलकर, उनके धर्म-विश्लेषण को सुनकर सारी थकान दूर हो गई। मन इस स्पष्ट सही ज्ञान के अमृत सिंचन से शीतल शांत हो गया। अभय धन्य हुआ।

आओ साधकों, हम भी पांचों नीवरणों को समझें और उन्हें दूर करने के प्रयत्न में लग जायं, सातों बोध्यङ्गो को समझें और उनको भावित करने के प्रयत्न में लग जायं। इसी में हमारा कल्याण निहित है।

कल्याण मित्र,

स.ना.गो.

संवेदना – विपश्यना भावना

डॉ. ओम प्रकाश

मानव शरीर की ज्ञानेंद्रिय का जब किसी बाहरी दृश्य, शब्द या विचार से स्पर्श या संपर्क होता है तो शरीर पर कोई-न-कोई प्रतिक्रिया होती है, चाहे वह सुखद हो या दुःखद, असुखद हो या अदुःखद, पर होती अवश्य है। ऐसा कैसे होता है, कुछ उदाहरणों से देखें। कानों पर कोई शब्द आया, सुनने वाले ने सुना, पहचाना, मूल्यांकन किया –यह तो गाली का शब्द है, मेरे अपमान का शब्द है –यह जानकर वेदना हुई। वेदना या जानकारी होते ही मन के द्वारा शरीर की अंतःस्रावी (endocrine) ग्रंथियों पर प्रभाव पड़ा और उनमें से स्रवण (secretion) हुआ। उसके परिणामस्वरूप हृदय की धड़कन बढ़ी, चेहरा तमतमा उठा, शरीर कांपने लगा, मुँह से अपशब्द निकलने लगे, जो पहले कभी नहीं कहा था, वह कहा जाने लगा। यह सब हुआ, अर्थात सुनने वाले में क्रोध जागा; एक विकार जागा। इसी प्रकार कोई भयानक दृष्य देखा या भयावह विचार आया। कोई विस्फोट या भूचाल का ज्ञान हुआ, तो मन में भय उत्पन्न हुआ और परिणामस्वरूप शरीर पीला पड़ गया; भय से थरथर कांपने लगा, उस स्थान से हट जाने या भागने की तीव्र इच्छा होने लगी। अर्थात, बाहरी कारण से भीतर प्रतिक्रिया हुई।

ऐसे ही वासना उठी या कोई ऐसा दृष्य देखा या कुत्सित विचार मन में आया, या प्रेमभरे शब्द सुने तो दूसरे प्रकार की जीव-रासायनिक प्रक्रिया हुई और मन में गुदगुदी होने लगी। शरीर पुलक- रोमांच से भर उठा और मुख से भी प्रेमभरे शब्द निकलने लगे – राग का विकार जागा। इस प्रकार बाह्य कारणों के द्वारा शरीर के भीतर नाना प्रकार की जीव-रासायनिक प्रक्रिया होती है और इन प्रक्रियाओं की हलचल शरीर पर पुलकन, स्पंदन, गर्मी, सर्दी आदि के रूप में होती है। बाहर का वातावरण ज्यादा उष्ण हो, याने शरीर के तापमान से ज्यादा हो तो शरीर के भीतर तापमान को सम रखनेवाली ग्रंथियां अपना काम आरंभ कर देती हैं। उनके प्रभाव से पसीना आता है। इसका उद्देश्य यही होता है कि त्वचा को कुछ ठंडा कर दिया जाय। पसीना आ गया तो शरीर में जल की न्यूनता आयी तो प्यास लगती है और व्यक्ति पानी पीता है। यह हुआ वातावरण का असर। इसी प्रकार वातावरण ज्यादा शीतल हो गया, तापमान शरीर को ठंडा करने लगा तो हमारे जीव-रासायनिक तंत्र तुरंत शरीर को कँपाने लगते हैं। शरीर कांपता है, रोंगटे खड़े हो जाते हैं। शरीर का कंपन, शरीर की मांसपेशियों के सिकुड़ने, संकुचित होने और फैलने से होता है। रोमों का खड़ा होना भी उनकी मूल में लगी छोटी-छोटी मांसपेशियों के सिकुड़ने से होता है। मांसपेशियों के सिकुड़ने-फैलने से गर्मी उत्पन्न होती है। शरीर ठंडा होने से बचता है। यह प्रकृति का अपना तरीका है। व्यक्ति अपनी बुद्धि के प्रयोग से अपने ऊपर कंबल, रजाई आदि ओढ़ लेता है, आग के पास बैठता है या कमरों को वातानुकूलित करता है। कहने का तात्पर्य यह है कि बाहरी कारणों से, चाहे वे त्वचा का स्पर्श करते हों या कान, नाक, आंख, जिह्वा आदि का स्पर्श करते हों; उनकी जीव-रासायनिक (Bio-chemical) प्रक्रिया होती ही है।

इतना ही नहीं, मांसपेशियां जब संकुचित होती और फैलती हैं तो उनसे विद्युत तरंगें भी उत्पन्न होती हैं। वे भी ऋण और धन (Plus और Minus) दो प्रकार की होती हैं तथा उनके चुंबकीय परिवर्तन भी होते हैं।

विज्ञान-शास्त्रियों ने इन विद्युत चुंबकीय तरंगों का अध्ययन करने के लिए यंत्र बनाये और इनका उपयोग अब शरीर व्याधियों के निदान के लिए होने लगा है। E.C.G (इलक्ट्रो-कारडियो-ग्राम) और E.E.G (इलेक्ट्रो इनसेफेलोग्राम), Holder, Eko, आदि हृदय और मस्तिष्क में उत्पन्न होने वाली तरंगों को कागजपर उतार कर उनका अध्ययन कर रोग के निदान में सहायक होते हैं। यह शरीर एक महान कार्यशाला है जिसमें सदा दिन-रात, अविचल रूप से कुछ-न-कुछ जीव-रासायनिक या विद्युत-चुंबकीय हलचल होती रहती है।

इतना ही नहीं, मन में उत्पन्न होनेवाले विचार, विश्वास और कल्पनाएं आदि का भी जीवन-क्रिया पर विद्युत-रासायनिक प्रभाव है। पोसिट्रोन एमिशन (Positron emission) टोमोग्राफी (Tomography) परीक्षण द्वारा मस्तिष्क पर इनका प्रभाव देखा जा सकता है। जैसे-जैसे विचार और अनुभूति बदलती है वैसे-वैसे कोषों में भी परिवर्तन आता है। यह सिद्ध हो गया है कि विचार यद्यपि अमूर्त (abstract) हैं, वे भी भौतिक तत्त्व (matter) का रूप धारण करते हैं। यह क्रिया हाइपोथलमस (Hypothalmus) नामक अंतःग्रंथि में होती है जो इन विचारों और अनुभूतियों को न्यूरोपेप्टाइड (Neuropeptide) नामक रासायनिक पदार्थ में परिवर्तित करती है। इन न्यूरोपेप्टाइडों द्वारा शरीर की विभिन्न अंतःग्रथियों को तथा शरीर के प्रत्येक भाग में स्थित ८०-१०० लाख, करोड़ (८०-१०० Trillion) कोशिकाओंको संदेश दिया जाता है। फलस्वरूप जीव-रासायनिक परमाणु, जो इनके प्रभाव से बनते हैं, इन कोशिकाओंको प्रभावित करते हैं। उदाहरणस्वरूप शोक पूर्ण विचार, चिंता पैदा करने वाली बातों के प्रभाव से इन कोशिकाओंद्वारा आमाशय में अम्ल (Acid) का प्रभाव बढ़ जाता है या धमनियों का संकुचन होता है, जिससे रक्तचाप, हृदयगति में बढ़ोतरी या पेट में जलन होती है। इसी प्रकार सुखद विचार और भाव एन्डोरफिन (Endorphin) का उत्पादन करते हैं, तो शरीर में हल्कापन, मन में प्रफुल्लता होती है और हृदय रोग, कैंसर आदि से बचाव में सहायक होते हैं। इस प्रकार के बीसियों न्युरोपेप्टाइड (Neuropeptide) पहचाने गये हैं। संक्षेप में कहा जाय तो – यह होगा कि "विचारों द्वारा उत्पन्न रासायनिक और जीव-रासायनिक प्रभाव हमारे स्वास्थ्य को अत्यंत ही प्रभावित करते हैं।"

अतः इन विचारों और संवेदनाओं को उचित प्रकार से वश में करना शांति देता है। इसी प्रकार उचित नैसर्गिक (Natural) व्यवहार अच्छे परिणाम स्वतः लाते हैं, उसी तरह जैसे एक सूर्यमुखी का फूल स्वभाव से ही सूर्य की ओर फिरता है, यद्यपि वह सूर्य से करोड़ों मील दूर है। इसी प्रकार साधना मन की स्थिति ऐसी बना देती है कि तनाव भी अच्छे तनाव (Stress) में बदल जाता है और रक्तचाप, हृदयरोग आदि से बचाव में सहायक होता है।

(आंकड़े 'हिन्दुस्तान टाइम्स' – २६/८/९० के लेख के आधार पर)

Suffering ceases when sensations cease.

- S.N.Goenka

जब संवेदना समाप्त होती है, समता आ जाती है, तो दुःख का निरोध हो जाता है। *- (गोयन्का)*

इन सब प्रक्रियाओं को साधारणतया हम जान या अनुभव नहीं कर पाते हैं। अंतर्मन और मन का कुछ अंश ही इन्हें अनुभव करता है।

इन सब प्रक्रियाओं का शरीर स्तर पर भी प्रभाव पड़ता है। यह हमने ऊपर देख लिया है। इन प्रक्रियाओं के प्रभाव की अनुभूति ही वेदना है। वेदना शब्द का अर्थ जानना या ज्ञान होता है। यह संस्कृत के 'विद' से बना है- इसी विद धातु से वेद, विद्या, विद्वान, वेदगू शब्द बने हैं। वेदना का मौलिक अर्थ समय के फेर से बदल गया है। अब तो भारत की प्रत्येक भाषा में वेदना शब्द का अर्थ पीड़ा ही रह गया है। आरंभ में इसका अर्थ अनुभूति – सुखद-दु:खद या असुखद-अदु:खद के लिए होता था। अब इसे और स्पष्ट करने के लिए संवेदना शब्द का प्रयोग किया जाता है। शरीर में होनेवाली किसी प्रकार की अनुभूति हो, वह चाहे किसी कारण से हो, संवेदना शब्द के अंतर्गत आती है। चाहे वह रोग या व्याधि से हो, देर तक बैठने से हो अथवा शरीर के भीतर होने वाली जीव-रासायनिक विद्युत-चुंबकीय कारणों से हो। सब की अनुभूति संवेदना के अंतर्गत आती है। जब मन अति तीक्ष्ण या संवेदनशील हो जाता है, तो इन तरंगों या इनके प्रभाव से शरीर पर होनेवाली संवेदनाओं को अनुभव करता है; चाहे मन से अथवा अंतर्मन से।

समस्त शरीर, शरीर के सारे अंग-प्रत्यंग, छोटी-छोटी इकाइयों से बने हैं। इन्हें Cells या कोशिका कहा जाता है। अंग-प्रत्यंग में इन कोशों का समूह होता है जो एक दूसरे की सहायता से शरीर की प्रत्येक क्रिया का संपादन करते हैं। ये कोश स्वयं भी सहस्रों अणु-परमाणुओं से बने हुए हैं और ये अणु और परमाणु भी electron और proton से बने हुए हैं। ये proton और electron स्वयं केवल विद्युत तरंग मात्र हैं, जो निरंतर गति करते ही रहते हैं।

सब्बो पज्जलितो लोको, सब्बो लोको पकम्पितो।

सब कुछ तरंग ही तरंग है और प्रकंपन करता रहता है। उदय होता है-व्यय होता है। एक तरंग उठती है और तुरंत नष्ट हो जाती है।- **उपज्जित्वा निरुज्झन्ति।**

विपश्यना के अभ्यास के द्वारा इन तरंगों द्वारा उत्पन्न हुई संवेदना के अनित्य स्वभाव को साधक अपनी स्वयं की अनुभूति द्वारा तटस्थभाव से देखते - देखते इनके द्वारा उत्पन्न – राग, द्वेष दोनों विकारों से मुक्त होने लगता है। पूरी तरह मुक्त होना सरल नहीं है, मार्ग लंबा है। परंतु धीरे-धीरे जितना मार्ग तय होता जाता है, उतने अंशों में विकारों की जकड़न से छुटकारा मिलता जाता है। यह साधक को स्वयं अनुभव होने लगता है और उसके रहन-सहन, बातचीत, व्यवहार को देखकर उसके संगी-साथियों, परिवार के सदस्यों और मित्रों को भी साधक में अभूतपूर्व परिवर्तन दीखने लगता है।